न्याय दर्शन का प्रत्यक्ष –विचार

BA Part 1 Philosophy Hons paper 1st 2019-20

Dr. Arti Kumari
Asso. Prof.
Deptt. Of Philosophy
B.N. College
T. M.B.U, Bhagalpur

भारतीय दर्शन में ज्ञान-विषयक विचारों पर वृहत् विवेचना की गई है। आस्तिक सम्प्रदाय ही नहीं नास्तिक सम्प्रदाय में भी ज्ञान के विषय जैसे ज्ञान क्या है, ज्ञान का प्रमाण क्या है? तथा इसकी सीमाएं क्या-2 हैं इन सभी विषयों पर व्यापक गवेषणा की गई है। आस्तिक सम्प्रदाय में न्याय-दर्शन का ज्ञान विषयक विचारों पर की गई विवेचना अन्य भारतीय दर्शनों में सर्वोपरि है। न्याय-दर्शन का ज्ञान-मीमांसा उनके तर्क-मीमांसा पर आधारित है। तर्क-मीमांसा अर्थात् बुद्धि या ज्ञान के व्यवहारिक स्वरूप का साधन है। न्याय-दर्शन में बुद्धि, ज्ञान और उपलब्धि को समानार्थक माना गया है। तर्क संग्रह के अनुसार-

"सर्वव्यवहार हेतुर्ज्ञानम"

न्याय-दर्शन में ज्ञान को आत्मा का विशेष गुण माना गया है जिसके कारण गुणों के आधार के रूप में आत्मा के अस्तित्व का अनुभव होता है। इस तरह न्याय-दर्शन ज्ञान या प्रमा को किसी वस्तु के यथार्थ स्वरूप को कहा है। इसे तर्क-संग्रह में इस प्रकार व्यक्त किया गया है —

इससे स्पष्ट है कि किसी वस्तु के यथार्थ ज्ञान को प्रमा के रूप में स्वीकार किया गया है तथा प्रमा के साधन को प्रमाण कहा जाता है। अर्थात् जिस साधन के माध्यम से किसी वस्तु के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त हो, उसे प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया है। न्याय-दर्शन में चार प्रकार के प्रमाण को मान्यता प्रदान की गई है —

प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द एवं उपमान।

इन सभी

(1) प्रत्यक्ष
(2) अनुमान
(3) शब्द
(4) उपमान

इन सभी प्रमाण विचारों पर न्याय-दर्शन में वृहत्-व्याख्या की गई है। प्रमाण-विचार पर अत्यधिक महत्त्व देने के कारण न्याय-शास्त्र का दूसरा नाम प्रमाण-शास्त्र भी है। महर्षि गौतम के सोलह पदार्थों में प्रमाण का स्थान सर्वप्रथम है। न्याय भाष्यकार वात्स्यायन ने प्रमाण विचार की महत्ता को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

(पृ 32) (1)

इससे स्पष्ट है कि न्याय-दर्शन में प्रमाण विचार का सर्वोपरि स्थान है। इसमें प्रत्यक्ष प्रथम पायदान पर अधिष्ठित है। ~~प्रत्यक्ष प्रमाण~~

प्रत्यक्ष की परिभाषा — प्रत्यक्ष प्रमाण भारतीय दर्शन में सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया प्रथम प्रमाण है। प्रत्यक्ष को आस्तिक एवं नास्तिक दोनों सम्प्रदाय में प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया है। यहाँ तक कि चार्वाक दर्शन में प्रत्यक्ष को ही एकमात्र प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। जबकि अन्य सभी प्रमाणों का खंडन किया गया है। प्रत्यक्ष को सभी प्रमाणों के आधार के रूप में स्वीकार किया गया है। दूसरे शब्दों में अन्य प्रमाण प्रत्यक्ष की अपेक्षा करते हैं। अन्य प्रत्यक्ष अर्था अर्थात् प्रत्यक्ष पूर्वक होते हैं। अनुमान ज्ञान प्रत्यक्षपूर्वक है क्योंकि अनुमान का ज्ञान लिंग दर्शन से होता है। उपमान सादृश्य दर्शन है तथा शब्द श्रवण प्रत्यक्ष है। इस प्रकार सभी प्रमाणों की प्रामाणिकता के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण की आवश्यकता होती है। इसे परिभाषित करते हुए न्याय भाष्य तात्पर्य दीपिका में कहा गया है—

। सर्वप्रमाणां प्रत्यक्षपूर्वकत्वात्"

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि अन्य प्रमाणों को प्रत्यक्ष की अपेक्षा होती है, परन्तु प्रत्यक्ष को किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती है। कहा भी जाता है – 'प्रत्यक्षे किंमु प्रमाणम्'।

न्याय-दर्शन ने प्रत्यक्ष को परिभाषित करते हुए कहा है कि प्रत्यक्ष इन्द्रियजन्य ज्ञान है। इसकी व्युत्पत्ति भी होती है – 'प्रति गतं अक्षं प्रत्यक्षं'। न्याय दर्शन में महर्षि गौतम ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है –

"इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानं अव्यपदेश्यं – व्यभिचारी व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं" (गौतम सूत्र १.१.४)

गौतम ने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि किसी भी वस्तु का ज्ञान वस्तुओं के इन्द्रियों के सन्निकर्ष द्वारा उत्पन्न अव्यपदेश्य भ्रमरहित ज्ञान है। जिसे वात्स्यायन ऋषि ने इस प्रकार परिभाषित परिभाषा को तीन भाग विश्लेषित किया है कि –

1) वस्तु और इन्द्रियों के बीच सम्पर्क स्थापित होता है।
2) इन्द्रियों और मन के बीच सम्पर्क की स्थापना होती है।
3) मन और आत्मा का सम्पर्क स्थापित होता है।

वात्स्यायन ने ~~इस प्रकार~~ बताया है कि वस्तु का इन्द्रियों से लेकर आत्मा तक पहुँचने की प्रक्रिया के द्वारा ज्ञान का अभ्युदय होता है। ये इन्द्रियाँ पाँच प्रकार की हैं –

आँख से रूप का ज्ञान
नाक से गंध का ज्ञान
कान से श्रवण ज्ञान
जीभ से रसना तथा
त्वचा से स्पर्श का ज्ञान होता है।

आँख से वस्तु का सम्पर्क स्थापित न हो तथा इन्द्रियाँ उसे मन तक न ले जाएं पुनः मन आत्मा तक संवहन का कार्य न करे तो रूप और आत्मा इसे प्रकाशित न करे तो रूप का ज्ञान असंभव है। पुनः मृगमरीचिका इत्यादि का भी प्रत्यक्ष ज्ञान होता है परन्तु यह भ्रमरहित ज्ञान न होकर अप्रमा ज्ञान है। इस कारण न्याय-दर्शन में प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए 'इन्द्रिय सन्निकर्ष' के साथ 'अशाब्दज' भ्रमरहित ज्ञान को आवश्यक माना गया है।

परन्तु नव्य न्याय के प्रणेता गंगेश उपाध्याय न्याय की इस परिभाषा से सहमति नहीं रखते हुए कहते हैं कि इन्द्रिय सन्निकर्ष के स्थान पर साक्षात्-कारित्व का होना प्रत्यक्ष के लिए आवश्यक है। इसे उन्होंने इस प्रकार स्पष्ट किया है —

'प्रत्यक्षस्य साक्षात्कारित्वं लक्षणम्' (तत्वचिंतामणि)

प्रत्यक्ष के भेद — न्याय-दर्शन में प्रत्यक्ष के मुख्यतः दो भेद स्वीकार किए गए हैं :-

(1) लौकिक प्रत्यक्ष

(2) अलौकिक प्रत्यक्ष

लौकिक प्रत्यक्ष का साधारण ढंग है जब इन्द्रियों का संयोग वस्तु के साथ होता है तो उसे लौकिक प्रत्यक्ष कहा जाता है। ये दो प्रकार का होता है — बाह्य प्रत्यक्ष तथा मानस प्रत्यक्ष। बाह्य प्रत्यक्ष के अन्तर्गत आँख, नाक, कान, जीभ एवं त्वचा द्वारा प्राप्त ज्ञान शामिल है।

मानस प्रत्यक्ष - मानस प्रत्यक्ष द्वारा मानसिक अनुभूतियों के साथ जब मन का संयोग होता है तो उससे प्राप्त ज्ञान मानस प्रत्यक्ष कहा जाता है।

पुनः लौकिक प्रत्यक्ष को दो भागों में वि
किया गया है -
निर्विकल्पक प्रत्यक्ष
सविकल्पक प्रत्यक्ष

निर्विकल्पक प्रत्यक्ष के अन्तर्गत अशाब्दिक ज्ञान
यह ज्ञान की प्रत्यक्ष प्रथम अवस्था है।

सविकल्पक प्रत्यक्ष - सविकल्पक ज्ञान को ही अन्य
भर्तृहरि जैसे दार्शनिकों का मानना है। ने स्वीकृति
मुहर लगाई है। उनके अनुसार कोई भी ज्ञान तब त
ज्ञान की श्रेणी में नहीं आता जब तक उसे शब्द के द्वारा
अभिव्यक्त न किया जा सके। क्योंकि किसी वस्तु का
हमें नाम से ही होता है। शब्द विहीन ज्ञान की सत्ता नहीं
इस कारण भी निर्विकल्पक ज्ञान को उन्होंने प्रत्यक्ष ज्ञा
श्रेणी में शामिल नहीं किया है।

न्याय-वैशेषिक दर्शन ने निष्प्रका
ज्ञान को निर्विकल्प ज्ञान और सप्रकारक ज्ञान को सविक
ज्ञान माना है। निर्विकल्पक ज्ञान न तो प्रमा है और न
वह प्रकारता आदि से शून्य ज्ञान है। इससे स्पष्ट
निर्विकल्पक अशाब्दिक ज्ञान है और सविकल्पक शाब
ज्ञान।

अलौकिक प्रत्यक्ष - अलौकिक प्रत्यक्ष के अन
किसी वस्तु का ज्ञान साधारण ढंग से न होकर असा
ढंग से होता है। अलौकिक प्रत्यक्ष तीन प्रकार का है

(1) सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष
(2) ज्ञानलक्षण प्रत्यक्ष
(3) योगज

सामान्यलक्षण प्रत्यक्ष - इसका संबंध सामा

प्रत्यक्ष से है। हमें साधारणतया वस्तु का ज्ञान प्राप्त होता है, परन्तु उसमें विद्यमान सामान्य का ज्ञान नहीं प्राप्त होता। जैसे - हम मनुष्य को देखते हैं, तो मनुष्य का ज्ञान प्राप्त होता है, परन्तु उसमें व्याप्त सामान्य मनुष्यत्व का ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं होता। न्याय - दर्शन वस्तुवादी दर्शन होने के कारण सामान्य को भी वस्तु - सत्य मानता है। अर्थात् अगर वस्तु का प्रत्यक्ष होगा, तो उसमें व्याप्त सामान्य का भी प्रत्यक्ष होगा। और यह लौकिक प्रत्यक्ष के माध्यम न होकर अलौकिक प्रत्यक्ष के माध्यम से होता है।

ज्ञानलक्षण प्रत्यक्ष - जब एक ज्ञानेन्द्रिय किसी वस्तु के स्वाभाविक गुण को ग्रहण करती है, साथ ही उस वस्तु के व्याप्त अन्य गुणों को ग्रहण करने की योग्यता नहीं होती है, परन्तु जब उन अन्य गुणों को ग्रहण करने की कल्पना की जाती है तब यह दूसरा ग्रहण अलौकिक ज्ञान प्रत्यक्ष कहा जाता है।

योगज प्रत्यक्ष - अलौकिक योगज प्रत्यक्ष के अन्तर्गत योगियों द्वारा भूत, वर्तमान एवं भविष्य तीनों कालों के ज्ञान प्राप्त किया जाता है। जिसमें अति सूक्ष्म वस्तुएँ काल तथा देश से अतीत दूरस्थ पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है। योगज प्रत्यक्ष के भी दो प्रकार हैं -

(1) योगज शक्ति (युक्त)
(2) युञ्जान

योगज शक्ति में योगी स्वयं सिद्ध होता है और यह शक्ति कभी नष्ट नहीं होती है। इसे ही युक्त कहा गया है।

युञ्जान इसे कहते हैं जब योगी को पूर्ण सिद्धि प्राप्त न होकर आंशिक सिद्धि प्राप्त होती है।

Date:

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि न्याय-दर्शन में प्रत्यक्ष को सभी प्रकार के ज्ञानों का आधार माना गया है। इसे आस्तिक एवं नास्तिक सम्प्रदाय दोनों ने स्वीकार किया है। चार्वाक दर्शन ने भी प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण स्वीकार किया है जबकि अनुमान, शब्द, उपमान इत्यादि का खंडन किया है। परन्तु प्रत्यक्ष की सत्ता को निर्विरोध स्वीकार करता है। चार्वाक दर्शन का तत्व मीमांसा भी उसके ज्ञान मीमांसा के अर्थात् प्रत्यक्ष पर ही आधारित है। इससे स्पष्ट है कि प्रत्यक्ष ही एकमात्र ऐसा प्रमाण है जिसे सभी दर्शनों में स्वीकार किया गया है।

न्याय दर्शन में इसे बहुत ही तर्क संगत ढंग से स्थापित करने का प्रयास किया गया है। न्याय-दर्शन के प्रमाण विचार के कारण ही इसे प्रमाण शास्त्र भी कहा गया है।